मरीचिका

भाग- 2

मूल मैथिली

लिली रे

हिन्दी अनुवाद

विभा रानी

मरीचिका

(भाग-दो)

मूल मैथिली- लिली रे

हिन्दी अनुवाद- विभा रानी

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: जून, 2021

© विभा रानी

प्रकाशकीय

श्रीमती लिली रे के उपन्यास 'मरीचिका' का उत्तरार्ध आज मैथिली के पाठकों को अर्पित करते हुए अपार आनंद हो रहा है। इसका पहला भाग मैथिली अकादमी से पिछले साल प्रकाशित हुआ और प्रकाशित होते ही पाठकों के प्रत्येक वर्ग द्वारा प्रशंसित हुआ।

पिछले सवा सौ साल में अपने देश और खास तौर पर मैथिल समाज के जीवन और चिंतन में महान क्रांति आई है। समाज में स्थापित मूल्य और व्यवस्था की नई नई परिभाषाएं सामने आईं। जीवन और चिंतन का तरीका बदला है। समाजशास्त्रीय भाषा में सामाजिक 'एलीट' तथा सामाजिक संरचना के कारण निश्चित रूप से परिवर्तन हुए हैं। मिथिला के पूर्वांचलीय सामंती सामाजिक परिप्रेक्ष्य में इस परिवर्तनशीलता का रंगीन चित्रपट है यह उपन्यास। इतने विशाल परिवेश को इतनी सूक्ष्मता से विस्तारपूर्वक दिखाने के लिए विशाल कैनवस चाहिए। इसलिए यह उपन्यास अपने दोनों भागों को मिलाकर एक हज़ार से अधिक पृष्ठों में समाप्त हो पाया।

इसकी लेखिका श्रीमती लिली रे कटिहार जिला के दुर्गागंज नामक गांव की निवासी हैं। इनके पिता थे भीमनाथ मिश्र, पूर्व डीआईजी, बिहार सरकार। लेखिका के व्यक्तित्व के प्रसंग में मैथिली अकादमी के पूर्व अध्यक्ष श्री श्रीकांत ठाकुर

विद्यालंकार के शब्दों में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि 'उच्च कुल, उच्च पद, उच्च जमींदार परिवार, प्राचीन सनातन परंपरा, अधुनातन जीवन धारा, उदारतम आचार विचार, विप्लव युगधर्म- इन सभी के प्रत्यक्ष दर्शन- स्पर्शन से बने एक अनुपम व्यक्तित्व का नाम है लिली रे, जिनकी आंखें अनुवीक्षण और परीक्षण दोनों में समान रूप से समर्थ हैं।'

मुझे पूरा विश्वास है कि जिस रूप में इस उपन्यास का पहला भाग पाठकों और समीक्षकों के बीच प्रशंसक और चर्चित हुआ, उसी तरह से यह दूसरा भाग भी समादृत होगा। इस उपन्यास ने विशालता और आंतरिक उत्कर्ष- दोनों में मैथिली साहित्य में एक कीर्तिमान स्थापित किया है। भविष्य में मैथिली जगत लिली रे से अधिकाधिक सर्जनात्मक कृतियों की अपेक्षा रखता है।

ह. /-

(मदनेश्वर मिश्र)

अध्यक्ष, मैथिली अकादमी, पटना

दिनांक- 25/11/1982

1

अमीन गांव में पहलेजा घाट से अधिक भगदड़ और भीड़ थी। ब्रह्मपुत्र नदी के घाट पर जहाज लगा हुआ था। उस पार था पांडू, उसके बाद गौहाटी। प्रथम श्रेणी के यात्री होने के कारण कुलियों ने सबसे अधिक महत्व दीनानाथ को दिया था। सीधे जहाज के केबिन में बिठा दिया था।

केबिन में एक और परिवार था। उसके बक्से पर लिखा हुआ था- 'जीसी नियोगी।' नियोगी साहेब ने अपनी कमीज उतार ली थी। दीनानाथ से बोले- 'क्षमा कीजिएगा। बहुत गर्मी है।' दीनानाथ कुछ नहीं बोले। पसीने से वे भी नहा रहे थे। हीरा के माथे से लगातार पसीना चू रहा था। पूरा माहौल ऐसा लग रहा था, जैसे चूल्हे पर रखे देग में मनुष्य उबल रहे हैं।

दूसरी कुर्सी पर नियोगी साहेब की पत्नी बैठी हुई थी। पंखे से वह कभी खुद को तो कभी अपने पति को झलने लगती। नियोगी साहेब की उम्र चालीस से ऊपर की लग रही थी। पत्नी चालीस के नीचे। दोनों का दोहरा व्यक्तित्व। नियोगी साहेब अखबार से हवा करते हुए बोले- 'शायद पाँच साल पर ऐसी गर्मी पड़ी है।'

'आठ! जिस साल दीपाली मेरे पेट में थी, ऐसी ही गर्मी थी।' उनकी पत्नी बोली।

'दीपाली की छुन्टू?'

'छुन्टू के समय में तो आइडियल होम बना था। याद नहीं है, तली हुई हिलसा मछली और खिचड़ी खाई थी?'

‘आइडियल होम की हिलसा मछली। इस बार 'सरसों बाटा' खिलाने के लिए कहना। एह! अब तो शिलांग पहुंचकर ही इस गर्मी से छुटकारा मिलेगा।’

‘बच्चे भी गर्मी से परेशान हो गए हैं।’

उनके छह बच्चे थे, जो केबिन के बाहर- भीतर कर रहे थे। सबसे बड़ी लड़की तेरह- चौदह साल की थी और सबसे छोटा दो ढाई साल का। छोटा बच्चा आया की गोद में था। नियोगी साहेब का पूरा परिवार जब केबिन में आ जाता, तब केबिन ठुँसे हुए बक्से की तरह जान पड़ता। दीनानाथ ने आंखों के इशारे से हीरा से बाहर चलने के लिए कहा। रेलिंग के पास खड़े होकर दीनानाथ ने हीरा से कहा- ‘यही है ब्रह्मपुत्र नदी।’

हीरा ने जीवन में पहली बार नदी देखा था- विशाल! बल्कि थोड़ा विकराल। ब्रह्मपुत्र नदी को चीरते हुए जहाज दूसरे घाट की ओर बढ़ रहा था।

घाट पर जहाज लगने के पहले ही झुंड के झुंड कुली रेलिंग फांदकर ऊपर चढ़ आए। कुली के माथे पर सामान रखवाकर हीरा का हाथ पकड़कर दीनानाथ नीचे उतरे। घाट पर एक साइनबोर्ड लगा हुआ था- ‘विशुद्ध मैथिल भोजनालय।’ दीनानाथ ने कुली से वहीं चलने के लिए कहा।

फूस की टाट से घेरकर भोजनालय बना हुआ था। ऊपर में टिन की छत। खाने के लिए काठ की बेंच और टिनही कुर्सियाँ लगी हुई थीं। वयस्क से एक सज्जन उठकर आगे आए। दीनानाथ को बैठने के लिए कुर्सी दी। उसके बाद मैथिली में अपने नौकर को पुकारा- 'रे मंता! पानी ला। फुर्ती कर।'

दीनानाथ ने पूछा- 'घर कहां हुआ?'

'पूर्णिया। और आपका?'

'दरभंगा की तरफ।' दीनानाथ बोले।

आदमी ने दीनानाथ के सामान की ओर उड़ती दृष्टि से देखते हुए पूछा- 'शिलांग की यात्रा?'

'हूँ।'

'कहां ठहरने का विचार है?'

'अभी कुछ तय नहीं किया है। आपको कुछ पता है?'

जवाब में उस व्यक्ति ने अपने दराज से एक कार्ड बाहर निकालकर दीनानाथ के हाथ में थमा दिया। दीनानाथ ने कार्ड पढ़ा-

'स्वादिष्ट भोजन, स्वच्छ कोठरी एवं मनोहारी दृश्य हेतु

अन्नपूर्णा होटल

ए. चिंतामणि झा

एजेंट के नाम पर उंगली रखते हुए दीनानाथ ने पूछा- 'यह आप ही हैं?'

‘जी। इसी से वह समझ जाएगा कि आप मेरे द्वारा भेजे गए हैं।’

‘कमीशन मिलता है?’

‘प्रति कार्ड चार आना।’

‘एक दिन में कितने यात्री हो जाते हैं?’

‘गर्मी में दस तक। वैसे चार, दो, तीन और कभी- कभी एक भी नहीं।’

हीरा बोली- ‘लेकिन आज तो बीस से अधिक लोग हैं।’

चिंतामणि झा हंसने लगे। बोले- 'उससे क्या! मुझे मिलेंगे दो ही कार्ड पर।’

‘ऐसा क्यों?’ दीनानाथ ने पूछा।

‘ये लोग ग्रुप में आते हैं। जैसे आप अगर दस लोगों के साथ आते तो दस कार्ड थोड़े ना लेते? और ये सभी लोग शिलांग थोड़े ना जा रहे हैं! डिब्रूगढ़, जोरहाट जलगांव- सभी जगहों के लिए यहीं से तो लोग जाते हैं।’

मंता पानी का ग्लास लगा गया। जनेऊधारी रसोइया थाली ले आया- दाल, भात, कद्दू की रसदार तरकारी, पापड़ और चटनी। अलग कटोरी में गुड डला हुआ दही। खाना खाते- खाते दीनानाथ ने पूछा- ‘यहां कब से हैं?’

चिंतामणि झा उत्साह से अपना इतिहास सुनाने लगे- 'चौदह साल का था तो एक दिन अपनी भौजी से झगड़ा हुआ। एक दिन जब वह खाना बना रही थी, मैं उसकी पीठ पर दो डंडे जमा कर भाग आया। भागते- भागते कटिहार स्टेशन पर आ गया। डर के मारे घर जाने का साहस नहीं था। क्या करें, सूझ नहीं रहा था। वहीं